Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-11,Issue-4,March-2018

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में मूल्य-बोध और नारी

डॉ.प्रा.भारमल पी. कणबी

प्रवक्ता, हिन्दी विभाग,

श्री.यु.एच.चौधरी आर्ट्स कोलेज,

वडगाम-385410, जिला-बनासकांठा

मो-9879597715

भूमिका :-

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के. उपन्यासों में एक अद्भूत एकसूत्रता मिलती है | उनकी अपनी निजी सामाजिक द्धष्टि है तथा वे एक निश्चित मानव मूल्य की स्थापना के लिए आग्रही है | व्यक्ति-व्यक्ति में द्धेष और अलगाव हो ऐसी सामाजिक व्यवस्था उन्हें मान्य नहीं है | सामाज में सभी को सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार है और इश्वर की दी हुई प्राकृतिक संपदा का उपयोग करने के लिए अपनी आवश्यकता एवं क्षमता के अनुसार सभी स्वतंत्र हैं | कुछ ऐसे शक्तिशाली व्यक्तियों, संगठनोंने यदि अपने निजि हित में मानवता का गला घोंटने के प्रयास में ऐसे मूल्यों का निर्माण कर लिया है कि जिनके कारण सही और गलत का निर्णय कर पाना कठिन हो गया है तो वे ऐसे व्यक्तियों एवं संगठनों की नि:सारता बडी शक्ति के साथ प्रकट करते हैं | इस द्धष्टि से द्विवेदीजी ने भारतीय समाज में सर्वाधिक उपेक्षित नारी की समस्याओं को उठाया है और उसे सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ऐसे पात्रों की कल्पना पौराणिक एवं ऐतिहासिक संदर्भो में की है कि वे वर्तमान सामजिक जीवन में भी नेतृत्व की क्षमता रखते हैं | अपनी ही दुर्बलताओं के कारण पुरुषशासित भारतीय समाजने नारियों को अभिशप्त सामाजिक जीवन जीने के लिए विवश किया

है तथा उन्हें व्याज्य एवं अवांछित समझकर उनकी और से आँखे मोड की है |

समाजने नारी के दुर्गुणों का तो गला काड-काडकर प्रचार किया है पर उनमें निहित सदगुणों की और न तो उसे देखवने को अवसर मिला है और न तो उसने उनके विकास के लिए अपनी और से कोई अवसर की प्रदान किया | इस सामजिक विडम्बना को द्विवेदीजीने भली र्भाति पकडा है और वे अपने सभी उपन्यासों में नारियों के इसी पक्ष के उदघाटन का प्रयास करते हैं | ऐतिहासिक परिवेश में द्विवेदीजी पुराणों, उपनिषदों एवं प्राचीन साहित्य में प्रतिष्ठित जीवन-मूल्यों को सामने रखते हुए जब अपनी बात कहते हैं तो उसे स्वीकार करने में किसी भी कार्य के लिए कोई कठिनाई नहीं होती |

आ. द्विवेदीजी संस्कार से ही नारी मर्यादा के पोषक रहे हैं | उनके यही संस्कार यथास्थान उनके पात्रों द्धारा प्रस्तुत मिलते हैं- " बहुत छुप्पन से ही में स्त्री का सम्मान करना जानता हूँ | साधारणत: जिन स्त्रियों को चंचल और कुलभ्रष्टा माना जाता है उनमें एक देवी-शक्ति भी होती है यह बात लोग भूल जाते हैं | में नहीं भूलता | में स्त्री-शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र मानता हूँ |"[१] स्त्री शरीर को देव-मन्दिर के समान पवित्र माननेवाले द्विवेदीजी नारी पर किये गये अनुचित आक्षेप से विचलित हो जाते हैं | ऐसी नारियों जिन्हें लोग बाह्य सामजिक द्धष्टि से अवांछित मान बैठते हैं, अपने आन्तरि क सदगुणों के द्धारा अवसर आने पर जिस प्रकार के विवेक एवं चारित्रिक औदात्य का परिचय देती हैं उसके वे इतनी ऊँची उठ जाती हैं कि उनके सम्मुख मर्यादा का बोझ सिरपर लादकर घूमानेवाला पुरुष बौना लगने लगता है |

बाणभट्ट की निपुणिका नाटकमण्डली से हट जाने के बाद न जाने कितनी सामाजिक प्रतारणाओं का शिकार बनी किसी से छिपा नहीं है | उसने अनुकूल - प्रतिकूल परिस्थितियों से विवश होकर समझोता अवश्य किया पर वे परिस्थितियों उसके सद्गुणों का उन्मूलन नहीं कर सकी | एक लम्बे अरसे के बाद जब पान की दूकान पर बैठी निपुणिका से बाणभट्ट मिलता है तो बाणभट्ट के प्रति प्रकट निपुणिका के भाव सहज ही उसके आन्तरिक गुणों को प्रकट कर देते हैं | उसकी दूकान पर खडे रहने वाले लोगों को लोग अच्छी द्धष्टि से नहीं देखते और निपुणिका कभी भी यह नहीं चाहती कि उसके आराध्य बाणभट्ट को लोग बुरी द्धष्टि से देखें |

उसका यह कहना है कि- "जहाँ जा रहे हो, वहाँ जाओ | यदि इस नगर में रहो, तो कभी-कभी दर्शन पाने की आशा में अवस्य रखूंगी | पर तुम इस दूकान पर अधिक देर तक मत ठहरो | यहाँ आनेवाले लोग स्त्री-शरीर को देव-मन्दिर नहीं मानते |"[२] पतित से पतित स्त्रियाँ भी द्धढ़ चरित्रवाले पुरुष का आदर करती हैं | मिट्टी के गाहक बहुत हैं पर जो उसे अस्वीकार करता है सहज ही आदर का कारण बन जाता है | समाज और परिस्थितियों का नारी निपुणिका प्रतीक है ऐसी नारियों की जिन्हें लोग भ्रष्य कहते हैं | द्विवेदीजी ने निपुणिका के माध्यम से जिस नारी-मूल्य की स्थापना की है उसे देखते हुए भ्रष्ट नारी की सतही परिभाषा में संशोधन की अपेक्षा है|

बाणभट्ट के प्रति निपुणिका के कटे गये ये वाक्य-इस दुनिया में तुम्हारे जैसे पुरुषरत्न दुर्लभ हैं |[३] किसी भी सजय पुरुष को चुहनेवाले हैं | अत: बाणभट्ट की प्रतिक्रिया की-"वह अगर पश्चात्ताप करती है, तो जिस नरक में पडी है, वहाँ भी स्थान नहीं मिलेगा ? वह कुल-भ्रष्टा स्त्री है, उसके सद्गुणों का समाज में क्या मूल्य है ? दुर्गुणों की फिर भी कुछ पूछ तो है ही"[४] स्वाभाविक है | इस प्रकार नारी शरीर, जिसे द्विवेदीजी देव-मन्दिर मानते हैं, वह हाड-मांस का है, ईट-चुने का नहीं | अत: वे शरीर की भ्रष्टता को , जो परिस्थितियों के कारण हैं , महत्व नहीं देते और महत्व देते हैं उसमें प्रतिष्ठित उस देवत्व को जो उनके नारी -पत्रों में शाश्वत मूल्य के रूप में वर्तमान है |

नारी के लिए खिंची गई एकांगी सामाजिक मर्यादाओं का उलंघन करते ही नारी कलंकिनी घोषित हो जाती है चाहे उसमें परिस्थियों का ही हाथ वयो न रहा हो | वे नारी के सद्गुणों के पक्षघर हैं, न की उसके अर्ह के, जो कि भट्टिनी का भर चुका है - "मेरा अर्हकार मर चुका है, अभिमान नष्ट हो गया है, कौलिन्य गर्व विलुप्त हो चुका है | मै धर्शिता अपमानिता, कलंकितनी, सौ-सौ मानवियों की र्भाति सामान्य नारी हूँ | जगत के दुःख प्रवाह में केन बुद्ध बुद्ध के समान में भी नष्ट हो जाऊगी और प्रवाह अपनी मस्तानी चाल से चलता जायेगा |"[५]

बाणभट्ट की आत्मकथा में जो स्थिति भट्टिनी की है वैसी ही स्थिति उनके उपन्यासों में आई सभी प्रमुख नारी पात्रों की है | 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भदिनी 'चारु चंद्रलेख' की चन्द्रलेखा पुनर्नवा की मृणालमंजिरी तथा 'अनामदास का

पोधा' की जाबाला सभी कुल की दृष्टि से बहुत सम्मान्त नहीं पर उसमें सभ्भ्रान्तता की ऐसी अनोखी सृष्टि द्विवेदीजी ने की कि विवश होकर नारी शरीर को देव-मन्दिर स्वीकार करना ही पडता है | नारी से बढकर अनमोल रत्न दूसरा कोई नहीं, पर उसे पुरुष की वासना नहीं बजिक उसका आश्रय चाहिए | " समाज की अग्निशिखा तो नित्य ही व्यक्तियों की आहुति ले रही है, पर रास्ता वया है ? नारी से बढ़कर अनमोल रत्न वया हो सकता है, पर उससे अधिक दुर्दशा किसी की हो रही है ?"[६] नारी की इसी दुर्दशा के कारण इतिहास साक्षी है भारतीय समाज के अभिशप्त होता रहा है | द्विवेदीजी ने पुरुष शासित समाज के सामने ऐसे नारी पात्रों को इस दंग से लाकर खड़ा कर दिया है कि उसे इस पर नये दंग से विचार करने के लिए विवश होना पडेगा |

ऐतिहासिक परिवेश में लिखे हुए उपन्यासों के पात्रों में अन्तदून्दू की सृष्टि करना कठिन होता है क्योंकि इतिहास उन पात्रों के मन का नहीं बल्कि बाह्य संघर्षों का ही आँकडा प्रस्तुत करता है | ऐतिहासिक एवं पौराणिक परिवेश में लिखे गये द्विवेदीजी के सांस्कृतिक उपन्यासों के पात्र स्थायी शाख्वत मूल्यों को सृष्टि क्र पाने में इसलिए सफल हो सके हैं कि वे 'सपाट' नहीं है | अपने विशिष्ट नारी पात्रों के माद्यम से द्विवेदीजी को अन्तदून्दू को सृष्टि करने में इसलिए सफलता मिली है कि वे प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर भी उपन्यास-कार की सहानुभूति अर्जित कर सकी है | 'बाणभट्ट' की निपुणिका, 'चारुचन्द्रलेख' की मैना और 'पुनर्नवा' की मंजुला में इन अन्तद्न्दोको सहज ही देखा जा सकता है | इस प्रकार द्विवेदीजी की ये अभिशप्त नारियाँ न केवल नवीन नारी मूल्यों की सृष्टि में सहायक हुई है बल्कि उनके द्धारा उपन्यासकार की कला भी शिल्प की द्रष्टि से कसौटी पर खरी उतरी है | चरित्र-निर्माण को जिस कला का परिचय द्रिवेदीजी ने अपने ईन नारी पात्रों के माध्यम से दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है | जिन स्त्रियों को लोग पतिता की संज्ञा देते हैं उनमें ही सच्चे नारीत्व का विकास दिखलाकर द्रिवेदीजी ने अन्ध-विश्वासों एवं समाज की भौंडी मान्यताओं पर बड़ा ही करार व्यंग्य किया है |

नारी का समर्पित सेवाभाव ही उसे देवी के पद पर प्रतिष्ठित करता है | महाकाव्य कामायनी में प्रसाद की श्रद्धा भी यही आदर्श प्रस्तुत करती है | 'चारुचन्द्रलेख' की मैना उसी प्रकार की समर्पित नारी भावना की प्रतीक है-" मैना तू

अच्छी लडकी है | चन्द्रलेखा ने महाराज को केवल धोखा दिया है | वह उनके किसी काम नहीं आ सकी |[७] 'पुनर्नवा' की चन्द्रा और 'अनामदास का पोथा' की जाबाला भी यही आदर्श प्रस्तुत करती है | पुनर्नवा की नगरश्री नर्तकी मंजुला की कला सभी लोगों में प्रशंसित है पर उसके यहाँ आनेवाले लोग वासना से प्रेरित होकर ही जाते हैं | उसके हदय में स्थित देवत्व को पहचाननेवाले देवरात जैसे लोग समाज में कितने हैं कि जिसके सम्मुख वह अपनी वेदना व्यक्त क्र सके | "यहाँ मिट्टी के गाहक आते हैं | अपना सर्वस्व उलीचकर, पाप खरीदकर लौट जाते हैं | पुरूषत्व के वे कलंक हैं | स्त्रीत्व के अपमानकरी | वे रसिकमन्य होते हैं, रसिक नहीं | इस विदो, विदूषको और बन्धुलो के स्वर्ग में केवल नरक-यातना के अधिकार ही जाते हैं | यहाँ कामुकता को पुरुषार्थ, भोडेपन को सरसता, मूर्खता की विदग्धता, स्त्रेणभाव को पौरुष माना जाता है | यहाँ तुम्हारा न आना ही उचित है |"[८]

आ. हजारीप्रसाद द्विवेदीने इस प्रकार समाज निर्मित नर्क में डूबी मंजुला जैसी नारियों के हदय में झांककर उसमें देवत्व देखने का प्रयत्न किया गया है | मंजुला के हदय को टीस और उसकी आंतरिक वेदना को द्विवेदीजीने अनुभव के धरातल पर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह लाख-लाख ऐसी नारियों का प्रतिनिधित्व करनेवाली है - "तुमने कहा था कि तेरा देवत्व तेरे भीतर है | मानती हुं, अवश्य होगा | पर तुम जो नही समझ सकोगे वह यह है कि स्त्री का देवता माध्यम खोजता है, ठोस ग्रहणीय माध्यम | साध्वी रमणियों पति का माध्यम या लेती हैं | वे धन्य हैं, स्पृहणीय हैं | पर हदय, गणिका का माध्यम नहीं होता | वह जुगुप्सित भोग के विकट दावानल में झुलसती रहती है | नारी का जीवन किसी एक को सम्पूर्ण रूप से समर्पित होकर ही चरितार्थ होता है |"[९] मंजुला पाप और कला से अर्थोपार्जन करती थी पर उसका वह वास्तविक जीवन न था | नृत्य और गीत उसके लिए पूजा के विषय ये जिसकी सहज ही रक्ष कर पाना पंकिल समाज से उसके लिए कठिन था | इसीलिए उसने अहंकार का कवच धारण कर रखा था जो देवरात ऐसे सुपात्र को पाकर चूर-चूर हो गया था | चन्द्रा 'पुनर्नवा' उपन्यास की सर्वाधिक विवादास्पद नारी है, वह परिस्थियों से समसौता न कर बगावत करती है - "मेरा विवाह मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे पिता ने एक ऐसे मनुष्य रूपधारी पशु से कर दिया जो पुरुष है ही नहीं | मैं उसे पति नहीं मान सकती | हलद्धीप के मुंह में कालिख लगता है तो सौ बार लगा करे | जो समाज इस प्रकार के विवाह की स्वीकृति देता है वह अपने मुंह में कालिख पहले ही

पॉट लेता है | मैंने आर्यक को ही अपना पति माना था | वह मेरा था और रहेगा |"[१०] ऐसे प्रसंगो की सृष्टि द्विवेदी जीने बाणभट्ट की आत्मकथा और चारुचंद्र लेख में भी की हैं | पर कुत्सित सामजिक रुढियों एवं अन्ध विश्वाशो के विरुद्ध जो जे हाद पुनर्नवा उपन्यास में चन्द्रा ने छेड़ रखा है वह उनमें नहीं | बल्कि उन उपन्यासों में घुटन की सृष्टि हुई है और उस घुटन से प्रकट प्रेम का सौन्दर्य छायावादी है | जो जयशंकर प्रसाद के सौन्दर्यबोध से प्रभावित जान पडता है |

द्विवेदीजी के नारी पात्रों की अपनी एक मर्यादा है | जिसकी वे रक्षा कर नविन प्रासंगिक सामाजिक मान्यता की स्थापना करती है | द्विवेदीजी स्वैराचार कही भी समर्थन नहीं करते | पुनर्नवा की चन्द्रा बगावत करती है पर वह स्वराचारिणी नहीं | यही कारण है कि बाणभट्ट की आत्मकथा के भट्ट की र्भाति ही पुनर्नवा के गोपाल आर्यक की भीरुता और संयम खलने वाला है | यह दूसरी बात है कि गोपाल आर्यक अन्त में चलकर चन्द्रा को स्वीकार कर लेता है और बाणभट्ट के माध्यम से प्रस्तुत स्थिति को एक अभिनव मोड मिल जाता है | इस प्रकार पुनर्नवा उपन्यास में लोगों को बहुपत्नीत्व की गन्ध भले ही लगती हो पर वे कभी भी यह नही कह सकते कि द्विवेदीजी ने अपने नारी पात्रों के द्धारा स्वैराचार को प्रथम दिया है सम्राट, समुद्रगुप्त के स्वर में स्वर मिलाकर द्विवेदीजी स्वैराचार का विरोध करते हैं- "यदि देश के मुर्धन्य लोग ही स्वैराचार में लिप्त हो जायेंगे तो साधारण प्रजा को कैसे उस प्रकार के अभिचारपूर्ण आचरण से विरत किया जा सकता है ?"[११]

इस प्रकार द्विवेदीजी के उपन्यासों के मूल स्वर को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उससे स्पष्ट हो जायगा कि वे विगलित सामजिक परम्पराओं में संस्कार लाने एवं युगा-नुरूप नवीन सामजिक मूल्यों के के प्रति बद्ध हैं मूल्यों के निर्माण में वे नारी को केन्द्र में रखने के पक्षघर हैं और वे इस मत के है कि सामजिक पापाचार की सृष्टि का द्रापित्व पुरुषों पर है, न कि स्त्रियों पर | यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों में समाज द्वारा उपेक्षित एवं पतित कहे जानेवाले नारी पात्रों में देवत्व का दर्शन किया है | जाति-र्पाति, ऊँच-नीच और वांछित-अवांछित के बिच खिंची भ्रामक रेखाओं को मिटाकर वे मानवता की दिग्विजय में आस्था रखने वाले उपन्यासकार हैं | यही कारण है कि उपन्यासों के माध्यम से पतित समझे जानेवाले ऐसे नारीपात्रों की सृष्टि की है कि जिनकी चरणधूलि मस्तक पर रखकर किसी भी

देश, जाति और काल में नारियों साध्वी एवं देवी कहलाने का अधिकार प्राप्त कर सकती है |

हिन्दी उपन्यास जगत में द्विवेदीजी के पुरुष पात्र भी अपने मानवीय गुणों के कारण महत्वपूर्ण हैं, वे महत्वपूर्ण इसीलिए भी हैं क्योकि उन्होंने नारी शरीर को देव-मन्दिर स्वीकार कर उसके अन्तर में निहित देवत्य का दर्शन किया | द्विवेदी की धरती स्वरूपा नारी समय-समय पर पंक में डूबकर अपने उद्धार के लिए पुरुषरूपी महावाराह की अपेक्षा अवश्य रखती है पर वह विधाता की ऐसी सृष्टि है जो उसकी इच्छा शक्ति को स्वरूप प्रधान करती है | इस प्रकार द्विवेदीजी ने अपने उपन्यासों में नारी मर्यादा की बडी जबर्दस्त वकालत की है |

सन्दर्भ सूचि:-

- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. ११
- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. २३
- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. २४
- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. २४
- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. १४१
- बाणभट्ट की आत्मकथा पृ. ३१०
- चारुचंन्द्रलेख, पृ. १९५
- पुनर्नवा, पृ.५५
- पुनर्नवा, पृ.५६
- पुनर्नवा, पृ.१२५
- पुनर्नवा, पृ.२३७